Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 2, February-2019, ISSN 2230-7540

ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शहरी महिला शिक्षको कार्यस्थल परिस्थितियों तथा कार्य संतुष्टि के बीच सम्बन्ध का अध्ययन

KM. Bazme Zhera[1]* Dr. Mohammad Kamil[2]

[1] Research Scholar, Shri Venkateshwara University, Gajraula, Uttar Pradesh

[2] M.A. Ph.D. UGC-NET (Sociology)

सार – *कामकाजी महिलाएं दोहरे दायित्वों का निर्वाह करती हैं जिससे वे तनावग्रस्त हो जाती हैं। नारी को शिक्षित करने से पूरा परिवार शिक्षित होता है, उसी तरह किसी समाज में नारी की स्थिति को ज्ञात करने के लिए नारी की शिक्षा की स्थिति को देखकर उसे ज्ञात किया जा सकता है। शिक्षा के समान अवसर नारियों की सम्मान जनक स्थिति दर्शाता है। प्राचीन काल में ऋग्वैदिक साहित्य में नारी की शिक्षा का अत्यन्त महत्व था तथा उसे पुरूषों के समान अवसर प्राप्त थे। अतएव उस दौर में नारी का समुचित सम्मान था तथा प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों की तरह उनकी भी सहभागिता निहित रहती थी। शनैः शनैः उत्तर वैदिक युग में पुरूषों का प्रभुत्व बढ़ता गया तथा नारी को शिक्षा से वंचित किया जाने लगा फिर भी उस समय शिक्षा की उतनी खराब स्थिति नहीं थी जितनी कि मध्य युग आते-आते हो गई। नारी की शिक्षा तथा उसके शोषित होने का सीधा सम्बन्ध है। सामाजिक उथल पुथल के बीच उत्तर वैदिक युग का अंत होते होते नारी की शिक्षा में कमी होती गयी। भारत की परतंत्रता के बाद ब्रिटिश शासकों द्वारा उनकी शिक्षा हेतु समुचित व्यवस्था नहीं की गई। वर्ष 1981 में प्राथमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या 64.107/-, माध्यमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या 28.60/- उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या 11.107/- थी। वर्ष 1991 में प्राथमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या 85.50/- माध्यमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या 47.00/-, उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या 10.30/- थी। वर्ष 2001 में प्राथमिक कक्षाओं में महिलाओ की संख्या 85. 90/-, माध्यमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या 49.90/- उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या 35.037/- थी। वर्ष 2011 में प्राथमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या 87.60/- माध्यमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या 49.957/- हो गई। इस प्रकार तालिका से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में महिलाओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। भारत में उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण में आर्थिक क्षेत्र, व्यवसाय एवं व्यापार में महिलाओं का स्थान महत्तवपूर्ण बनता जा रहा है। निम्नवर्ग की महिलाओं ने तो आर्थिक महँगाई के कारण विवश होकर मजदूरी प्रारंभ की। उन्नीसवीं सदी में महिला कृषि कार्य करती थी। किन्तु मध्यम वर्गीय महिला का व्यवसाय में प्रवेश विलंब से हुआ। मध्यमवर्गीय महिला ने प्रारंभ में शिक्षक का कार्य किया। द्वितीय विष्व युद्ध के समय (1940-42) भारतीय महिलाओं का उत्थान प्रारंभ होने लगा था।*

कुंजीशब्द: *ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों, व्यावहारिक कठिनाइयों, शहरी महिला शिक्षको*

----------X----------

प्रस्तावना

विषय प्रवेश

शिक्षा जीवन-पर्यन्त चलने वाली एक सामाजिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में छात्र औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक साधनों द्वारा हमेशा कुछ न कुछ ज्ञान अर्जित करता रहता है। शिक्षा प्राप्त करने का सामान्यतः आशय औपचारिक शिक्षा/शिक्षण से ही होता है, जो कि पूर्ण तथा सुनियोजित होती है। इसके लिए विद्यालयों में शिक्षण नियंत्रण एवं निश्चित समय पर सम्पन्न होता है। शिक्षण मानवीय सम्बन्ध केन्द्रित अथवा छात्र केन्द्रित होता है। छात्र और

www.ignited.in

शिक्षक के मध्य सामाजिक वातावरण में शाब्दिक अन्तःक्रिया होती है। यह ऐसी अन्तःक्रिया है, जिसमें एक परिपक्व व्यक्तित्व के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होता है तथा अधिक परिपक्व व्यक्तित्व कम परिपक्व व्यक्तित्व की अग्रिम शिक्षा की व्यवस्था करता है। शिक्षा राष्ट्रीय उत्तरदायित्व है जो वर्तमान गतिहीन समाज को जीवन्त बना सकती है, ताकि वह विकास एवं परिवर्तन के प्रति कटिबद्ध हो सके। शिक्षा शान्तिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र साधन है। यह मानव साधनों का विकास कर अन्य सभी संसाधनों के विकास को गुणात्मक रूप से प्रभावित करती है।

शिक्षा ही मानवीय विकास का मूल साधन है, जो मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास करके उसके ज्ञान, कला एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन करती है तथा उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं चरित्रवान योग्य नागरिक बनाती है। शिक्षा की प्रक्रिया में बालक जन्म के कुछ समयान्तराल बाद से ही शिक्षा ग्रहण करने लगता है। परिवार के सदस्य उसे बोलना, सुनना सिखाने लगते हैं। वह परिवार से दैनिक क्रियाकलाप के विषय में सीखना प्रारम्भ कर देता है। वह अपने शैशव काल में जहाँ एक तरफ अपने माता-पिता व परिवार से शिक्षा ग्रहण करता है, वहीं दूसरी तरफ प्राकृतिक वातावरण एवं इसके घटकों से प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ सीखता रहता है। "शिक्षा का अर्थ बालक की अन्तःशक्तियों का बाह्य जीवन से समन्वय स्थापित करना है।" हरबर्ट स्पेन्सर की उपरोक्त युक्ति स्पष्ट करती है कि बालक के अन्दर निहित आन्तरिक शक्ति, जिज्ञासा को बाह्य रूप से प्रस्फुटित करके तत्कालीन वातावरण के साथ सुव्यवस्थित समायोजन स्थापित करना ही शिक्षा है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शहरी महिला शिक्षको कार्यस्थल परिस्थितियों तथा कार्य संतुष्टि के बीच सम्बन्ध का अध्ययन

2. प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा का अध्ययन

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की जड़ जितनी गहरी है, उतनी ही प्राचीन यहाँ की शिक्षा प्रणाली भी है। एक तरफ हिमालय तो अन्यत्र महासागरों से घिरा भू-भाग पवित्र नदियों से अभिसिंचित इस देश में सभ्यता के अति प्राचीन काल से ही ऋषियों-मुनियों ने प्रकृति के मध्य रहकर वास्तविक शिक्षा प्राप्त करने पर बल दिया। शिक्षा का प्रस्फुटन हमें नदी घाटी सभ्यता से ही प्राप्त होता है, परन्तु वास्तविक शिक्षा वैदिक काल से आरम्भ होती है।लगभग 2500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक का समय वैदिक काल कहा जाता है। इस युग में शिक्षा का प्रारम्भ ऋग्वेद के रचना काल से ही माना जाता है। शिक्षा के प्रमुख स्रोत वेद- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्ववेद हैं। वेदों में शिक्षा शब्द का प्रयोग विद्या, ज्ञान, बोध एवं विनय आदि अर्थों में हुआ है। सायण ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में लिखा है, "जो स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण-प्रकार का उपदेश दे, शिक्षा दे, वही शिक्षा है।" इस युग में शिक्षा को अन्तर्ज्योति माना जाता था, जिसे प्राप्त करके मानव संसार के समस्त बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति करता था। शिक्षा आध्यात्मिक थी। आर्यों का विश्वास था कि शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक व सामाजिक विकास हो सकता है। शिक्षा को प्रकाश का स्रोत माना गया है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा पथ-प्रदर्शन करती है, व्यवहार में परिवर्तन लाती है तथा व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करती है। वैदिक युग में शिक्षा का विकास ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ धर्म पर चलकर मोक्ष प्राप्त करने के लिए किया गया था। इस समय शिक्षा के उद्देश्य ईश्वर भक्ति की भावना, धार्मिकता का समावेश, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों की समझ, सामाजिक कुशलता की उन्नति तथा संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार भी था। वैदिक युगीन शिक्षा व्यवस्था बाह्य नियंत्रण से मुक्त थी।

वैदिक काल में शिक्षा दो रूपों में उपलब्ध थी-

1. प्रारम्भिक शिक्षा,

2. उच्च शिक्षा।

जब बालक 5 वर्ष का हो जाता था, तब उसकी प्रारम्भिक शिक्षा का आरम्भ-विद्यारम्भ संस्कार से होता था। विद्यार्थी का मुण्डन करके नवीन परिधान धारण कराकर कुल पुरोहित द्वारा मन्त्रोच्चारण करके गुरुकुल में प्रवेश दिया जाता था।

वैदिक युगीन शिक्षा पद्धति मौखिक थी। शिक्षक समस्त ज्ञान मौखिक ही देता था, जिसे विद्यार्थी कण्ठस्थ कर लेते थे। श्रवण, मनन, निदिध्यासन नामक तीन शिक्षण प्रविधियाँ थीं। सर्वप्रथम विद्यार्थी गुरु की बातों को सुनता था, फिर जो कुछ सुना, उस पर चिन्तन करता था, तथ्यों का विश्लेषण करता था और शंका होने पर उसका समाधान प्राप्त करता था। अन्त में निदिध्यासन द्वारा वह नवीन ज्ञान को आत्मसात् करके वैसा ही करने का प्रयत्न करता था। इस वक्त शिक्षण विधि में प्रवचन तथा व्याख्यान के अतिरिक्त प्रश्नोत्तर विधि भी प्रचलित थी। शंका समाधान

www.ignited.in

हेतु वाद-विवाद तथा शास्त्रार्थ प्रणाली भी अपनायी जाती थी ।गुरुकुल में सभी वर्गों के बालक शिक्षा ग्रहण करते थे।

प्रारम्भिक शिक्षा की सम्भांवित अवधि 6 वर्षों तक थी। प्रारम्भिक शिक्षा में बालकों को सर्वप्रथम वैदिक मन्त्रों का उच्चारण सिखाया जाता था, तत्पश्चात् कण्ठस्थ करने व पढ़ने-लिखने की शिक्षा दी जाती थी। फिर उन्हें प्रारम्भिक भाषा ज्ञान, प्रारम्भिक व्याकरण एवं छन्दशास्त्र और व्यावहारिक गणित की शिक्षा दी जाती थी। वैदिक काल में शिक्षक ऋषि-मुनि ही हुआ करते थे, जो उद्भट विद्वान, स्वाध्यायी, धर्मज्ञ एवं आदर्श पुरुष होते थे। समाज में उन्हें सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। देवतुल्य प्रतिष्ठा प्राप्त शिक्षक गुरुकुलों पर पूर्ण स्वामित्व रखते थे। गुरुकुल की समग्र व्यवस्था का दायित्व गुरुओं का ही होता था। गुरु अपने शिष्यों को पुत्रवत् मानते थे। वे छात्रों में सदाचार की भावना, योग्यता-संवर्धन, विविध कौशलों में दक्षता प्रदान करके उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करते थे। वात्सल्य भाव से उनकी देख-रेख, उनके भोजन, आवास आदि का प्रबन्ध करना तथा उनकी शंकाओं का समाधान करना अपना पुनीत कर्त्तव्य मानते थे। वैदिक कालीन शिक्षा सार्वजनिक एवं निःशुल्क थी। सभी को शिक्षित करने का दायित्व गुरुओं पर था और गुरु अपने नवानुभवों से विद्यार्थियों को शिक्षित करते थे। प्राचीन काल से ही हमारी शिक्षा धर्म से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थी।

इसके परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म के प्रस्फुटित होने पर छठवीं शताब्दी ई.पू. में शिक्षा बौद्ध धर्म का अनुसरण करने लगी। इस समय जो धार्मिक क्रान्ति हुई, उसका प्रभाव भारतीय शिक्षा प्रणाली पर भी पड़ा। परिणामस्वरूपएक नवीन शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात हुआ, जिसे बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली की संज्ञा दी गयी। बौद्ध धर्म बौद्धमठों में विकसित हुआ था, अतः ये बौद्ध मठ धर्म के साथ-साथ बौद्ध शिक्षा और ज्ञान के केन्द्र थे। यद्यपि कि बौद्धकालीन शिक्षा वैदिक शिक्षा की प्रतिद्वन्द्वी थी, परन्तु अनेक बातो जैसे- निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति, चरित्र निर्माण इत्यादि में सदृश ही थी। बौद्धकालीन शिक्षा का उद्देश्य भारतीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार करना भी था। बौद्धकालीन शिक्षा के केन्द्र बौद्ध मठ ही थे, जहाँ पर शिक्षक का दायित्व बौद्ध भिक्षु निभाते थे। विद्वान् भिक्षु ही शिक्षा का संचालन करता था, जिसके अधीन विद्वान विषय विशेषज्ञ होते थे, जिन्हें "उपाध्याय" कहा जाता था।

वैदिक कालीन शिक्षा के सदृश बौद्धकालीन शिक्षा भी दो रूपों में व्यवस्थित थी

1. प्रारम्भिक शिक्षा,
2. उच्च शिक्षा।

प्राथमिक शिक्षा 8 वर्ष से प्रारम्भ होकर 12 वर्ष की आयु तक चलती थी। प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था बौद्ध मठों में थी। यह केवल बौद्ध धर्म को मानने वालों के लिए ही नहीं, अपितु जनसाधारण के लिए भी सुलभ थी। प्रारम्भ में यह शिक्षा पूर्णतया धार्मिक थी, परन्तु जब ब्राह्मणो द्वारा समानान्तर शिक्षण संस्थाएँ स्थापित की गयीं और उनमें लौकिक शिक्षा दी जाने लगी तो बौद्ध मठों में भी लौकिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। बौद्ध मठों में प्रवेश ष्प्रव्रज्या" नामक संस्कार द्वारा दिया जाता था और बालक बौद्ध मठ में प्रवेश करके नवशिष्य या भिक्षु कहलाने लगता था। बौद्ध मठों में शिक्षकध् बौद्ध भिक्षु बालक को लिखने पर भी विशेष बल दिया जाता था। देशाटन, प्रकृति निरीक्षण, तर्क, वाद-विवाद, व्याख्या एवं शास्त्रार्थ आदि का भी उपयोग किया जाता था। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध पुत्रवत् तथा सौहार्द्रपूर्ण था। ये परस्पर प्रेम, श्रद्धा, विश्वास एवं कर्तव्यों पर आधारित थे। शिक्षक का दायित्व विद्यार्थियों के आवास व भोजन का प्रबन्ध करना भी था। विद्यार्थियों का शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक विकास करने का दायित्व शिक्षकों पर था, जिसे वे पूरी निष्ठा के साथ करते थे। भारतीय सभ्यता व संस्कृति इतनी उदात्त है कि जो भी यहाँ आया, उसने इसे अपना लिया। आठवीं शताब्दी के समय में भारत की समृद्धि से आकर्षित होकर मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। 712 ई. से मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के 300 वर्षों बाद दसवीं शताब्दी के अन्त में महमूद गजनवी ने सत्रह बार आक्रमण किया, परन्तु भारत में मुस्लिम शासन की शुरुआत मुहम्मद गोरी ने की, जो मुगल वंश के शासकों तक चलता रहा। मुस्लिम कालीन शिक्षा 500 वर्षों तक चलती रही। मुस्लिम शासकों ने अपने शासन को सुदृमध्ययुगीन नाम से जानी जाने वाली यह शिक्षा प्रणाली मकतबों एवं मदरसों में व्यवस्थित थी। मकतब "प्रारम्भिक शिक्षा" और मदरसा "उच्च शिक्षा" के केन्द्र थे।

वैदिक काल में महिलाओं के सामाजिक सहभागिता के सन्दर्भ में कतिपय उदाहरण मिलते है परन्तु ये महिलायें सामान्य वर्ग से सम्बन्धित नहीं थी, ये उस समय के राजघरानों से जुड़ी हुई थी। भारतीय समाज पुरूष प्रधान समाज रहा है। समाज में पुरूष का ही वर्चस्व सर्वदा पाया गया है, चाहे वह रामायण हो या महाभारत या मध्यकाल। ब्रिटिश काल में भी पश्चिमीकरण एवम् नवजागरण की प्रक्रिया के कारण महिलाओं की स्थिति में आंशिक परिवर्तन आये हैं। महिलाओं की स्थिति का आकलन इसी तथ्य से

www.ignited.in

विदित होता है कि "1878 ई. में बाम्बे विश्वविद्यालय में दो जैन बहनें स्नातक कक्षा में प्रवेश लेने गयी तो वहाँ के कुलपति ने प्रवेश देने से मना कर दिया, क्योंकि विश्वविद्यालय चार्टर में महिलाओं के प्रवेश का प्राविधान नहीं था। बहुत परिश्रम के बाद 1882 ई. में उन्हे स्नातक कक्षा में प्रवेश का अवसर प्राप्त हुआ।"

महिलाओं की शिक्षा का विकास भारत में औद्योगिकी विकास के साथ प्रारम्भ हुआ। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया, शिक्षा का प्रसार, आवागमन एवं संचार के माध्यम ने महिलाओं को विकास के अवसर प्रदान किए। कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी एवम् वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने महिलाओं के विकास में पंख लगा दिये हैं। महान दार्शनिक और शिक्षाविद डॉ. राधाकृष्ण मनुष्य को सही अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए शिक्षा को सर्वाधिक आवश्यक मानते थे। उनके अनुसार, शिक्षा वह है, जो मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ उसके हृदय एंव आत्मा का विकास करती है। शिक्षा के उद्देश्यों को लेकर कहा जाता है कि शिक्षा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए सबसे जरूरी हथियार है और किसी भी राष्ट्र के विकास में शिक्षा एक बुनियादी तत्व है।

नेल्सन मंडेला के अनुसार "शिक्षा सबसे ताकतवर हथियार है जिसे आप दुनिया बदलने के लिए इस्तेमाल कर सकते हो। "शिक्षा का मतलब केवल पाठ्यपुस्तकों से सीखना भर नहीं है अपितु शिक्षा व्यक्ति के ज्ञान, मूल्यों, कौशलों और क्षमताओं का विकास करती है, शिक्षा व्यक्ति के खुद के विकास के साथ-साथ समाज और राष्ट्र के विकास के लिए प्रेरित करती है। अतः शिक्षा व्यक्ति के खुद के विकास के साथ समाज और एक राष्ट्र के लिए बहुत जरूरी है। शिक्षा के माध्यम से बढ़ती जनसंख्या, गरीबी, सांप्रदायिकता, लिंगभेद जैसी समस्याओं से निपटा जा सकता है। शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है 'प्राथमिक शिक्षा' क्योंकि प्राथमिक शिक्षा ही आगे की शिक्षा का मजबूत आधार बनती है। अगर कोई बच्चा गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो उसकी आगे की शिक्षा के लिए एक मजबूत आधार बन जाता है। सामान्य तौर पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अर्थ ऐसी शिक्षा से लगाया जाता है जो बच्चे को रटने से दूर ले जाती हो तथा केवल जानकारी आधारित ना हो बल्कि अवधारणाओं की समझ पर हो। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की प्रचलित शब्दावली के अनुसार ऐसी शिक्षा जो 'शिक्षक व पुस्तक केन्द्रित' के स्थान पर 'बाल केन्द्रित' शिक्षा हो तथा बच्चे के ज्ञान, मूल्यों, कौशलों और क्षमताओं का विकास करती हो। तो प्रश्न उठता है कि हमारी प्राथमिक शिक्षा कैसी हो? जिससे बच्चे की आगे की शिक्षा के लिए मजबूत आधार मिल सके और जो बच्चे को तार्किक समझ के विकास के साथ स्वावलंबी बनने में सहायक हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने अनुच्छेद-45 के जरिये 1951 में यह वायदा किया था कि राज्य इस संविधान के लागू होने की तारीख से दस साल के भीतर चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रयास करेगा।लेकिन कानून के रूप में इसको अमलीयजामा पहनाने मे छह दशक से ज्यादा समय लग गया।

आखिरकार विभिन्न कमिशनों और समितियों की सिफारिशों के बाद यह कानून 2009 में भारतीय संविधान के 86वें संशोधन के तहत सामने आया और 1 अप्रैल 2010 को लागू किया गया। इसके बाद से शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया गया और राज्यों को जिम्मेदारी दी गई कि प्रत्येक बच्चे को प्राथमिक शिक्षा देना सुनिश्चित किया जाये। शिक्षा का अधिकार अधिनियम कानून के तहत शिक्षा की गुणवत्ता, सामाजिक दायित्व, निजी स्कूलों में आरक्षण, छात्र-शिक्षक अनुपात, पीने का पानी, शौचालय, स्कूल की दीवारें और स्कूलों में बच्चों के प्रवेश को नौकरशाही से मुक्त कराने का प्रावधान किया गया है। अधिनियम के लागू होते ही भारत आधे-अधूरे रूप से उन देशों की सूची में शामिल हो गया जो बच्चों को निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कानूनन जवाबदेह हैं 'इस अधिनियम को साक्षारता की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना गया। क्योंकि इसके लागू होने के बाद छह से चौदह साल की उम्र के बच्चे के लिए शिक्षा का अधिकार' मौलिक अधिकार बन गया।

लेकिन शिक्षा का अधिकार अधिनियम कानून के बावजूद देश में प्राथमिक शिक्षा के नतीजों में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया। अधिनियम के लागू होने के पाँच वर्ष बाद सुधार कम और कमियाँ ज्यादा नजर आने लगी है। आज भी इसको जमीनी स्तर पर लागू कराने में भी पूरी तरह से कामयाबी नहीं मिल सकी है। अधिनियम को लागू करने के लिए सरकार ने स्कूलों को तीन साल का समय दिया था जो मार्च 2013 में पूरा हो गया है। लेकिन रिपोर्ट के अनुसार मार्च-2013 तक देश के महज आठ फीसद स्कूलों में यह कानून पूर्ण रूप से लागू किया जा सका है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जनवरी 2014 शिक्षा के अधिकार अधिनियम कानून' के क्रियान्वयन को लेकर जारी रिपोर्ट के अनुसार भौतिक मानकों जैसे स्कूलों की अधोसरंचना, छात्र-शिक्षक अनुपात आदि को लेकर स्कूलों में सुधार देखने को मिलता है। लेकिन प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता मे बहुत कमी आई है। शिक्षकों के मुताबिक प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता की कमी में शिक्षा का अधिकार अधिनियम कानून की बड़ी भूमिका रही

है। इस कानून का एक बहुत ही चर्चित प्रावधान है कि आरंभिक शिक्षा (कक्षा 1 से 8 तक) पूर्ण होने तक किसी भी कक्षा में छात्र को रोका नहीं जाएगा ।इस संबंध में आप अगर शिक्षकों कि राय जानना चाहोगे तो वो इससे खुश नहीं है।

शिक्षक के व्यक्तित्व और चरित्र का प्रभाव शिक्षार्थी के मानस पर पड़ता है। अध्यापक के महत्व की चर्चा करते हुए डॉ. राधा कृष्णन् ने लिखा है'- "समाज में अध्यापक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है, वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराऐं और तकनीकी कौशल पहुँचाने का केन्द्र है। और सभ्यता के प्रकाश को प्रज्जवलित रखने में सहायता देता है एक अध्यापक अपने जीवन काल में अनुमानतः हजारों विद्यार्थियों को शिक्षित करता है।"

प्राचीन समय में बालकों को शिक्षा गुरूकुलों में दी जाती थी, गुरू व्याख्यान विधि द्वारा बालकों को शिक्षा प्रदान करता था। गुरूकुलों का वातावरण शान्त व प्रकृतिमय था।

वर्तमान समय में गुरूकुलों का स्थान विद्यालयों ने लिया है इन विद्यालयों में शिक्षकों द्वारा बालकों को शिक्षा प्रदान की जाती है, आज शिक्षक पर केवल शिक्षा प्रदान करने का ही भार नहीं है अपितु अनेक कार्य जैसे जनगणना, नामांकन कार्य आदि। अधिक कार्य दबाव के कारण उनके मानसिक स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ रहा है, जिससे अध्यापन कार्य के प्रति उनकी अरूचि बढ़ती जा रही है। गत वर्षों से मानसिक अस्वस्थता बड़ी तीव्र गति से बढ़ रही है, जिसने सामाजिक, आर्थिक एवं राष्ट्रीय विकास को अधिक प्रभावित किया है और गम्भीर समस्यायें उत्पन्न कर दी है। मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं ने राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण स्थान ले लिया है।

शिक्षा की प्रक्रिया में मानसिक स्वास्थ्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शैक्षिक उपलब्धियों के लिये मानसिक स्वास्थ्य महत्वपूर्ण परिस्थिति मानी जाती है ओर एक मानसिक रूप से स्वस्थ शिक्षक ही कक्षा में प्रभावशाली अधिगम परिस्थितियों को उत्पन्न कर सकता है। यदि शिक्षक मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं है तो वह छात्रों की समस्याओं को हल नहीं कर सकता और न ही समुचित निर्देशन दे सकता है,शिक्षक के असमायोजन का छात्रों पर प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता।

जब व्यक्ति अपनी क्षमता से भी अधिक कार्य करता है तो उसे कार्य दबाव कहते है। अधिक कार्य करने के कारण व्यक्ति तनाव महसूस करता है। कुछ अध्ययनों के अनुसार ज्ञात हुआ है कि अधिकांश सरकारी व गैर सरकारी शिक्षक अध्यापन को एक तनावपूर्ण व्यवस्था मानते है। छात्रों, सहयोगियों के साथ प्रतिदिन की अल्पक्रिया और शिक्षक का सत्त और खण्डित माँगें, अधिकांशतः थका देने वाला दबाव उत्पन्न करती है जब यह दबाव अत्यधिक कठोर हो जाता है तो इनके नकारात्मक, शारीरिक, मानसिक, व्यावसायिक परिणाम प्राप्त होते है। व्यवसाय में अत्यधिक मात्रा में तनाव, सन्तोष की कमी अध्यापकों में कार्य असन्तुष्टि को जन्म देती है।

अतः आज के सन्दर्भ में सरकारी व गैर सरकारी अध्यापकों की कार्य दबावग्रस्तता के कारण उनके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ रहा है जैसे अधिक कार्य करने के कारण शिक्षक चिड़चिड़ा हो जाता है तथा हमेशा तनाव में रहता है, जिससे वह अपने व्यवसाय के प्रति न्याय नहीं कर पाता है। बालकों के मानसिक स्वास्थ्य की अपेक्षा शिक्षकों का मानसिक स्वास्थ्य कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है। शिक्षक मानसिक रूप से स्वस्थ होने पर विद्यार्थी की समस्याओं को हल कर सकता है और उन्हें समुचित निर्देशन भी यदे सकता है, शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य के विकास के लिये आवश्यक है कि शिक्षण परिस्थितियों और शिक्षण सेवाओं में सुधार लाया जाये। शिक्षक अपने मानसिक स्वास्थ्य का स्वयं विकास कर सकता है। यदि इसके सम्बन्ध में उन्हें समुचित बोध कराया जाये।

प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा

स्वतन्त्र भारत में बालिका शिक्षा की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है फिर भी अनेक समस्याएं आज भी बरकरार हैं। महिलाओं की स्थिति में इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के बावजूद अत्याचारी एवं अप्रगतिशील विचारों वाला पुरुष वर्ग नारी महत्ता को स्वीकार नहीं करता है। भविष्य में होने वाली सन्तान भले ही निरक्षर रह जाये लेकिन पुरुष नारी शिक्षा का विरोध करके अट्टहास करता है। वह अपनी रूढिवादी धार्मिक संकीर्णता एवं नारी जाति पर शासन करने की चिरकाल से विरासत में मिलने वाली धारणा का परित्याग करने के लिए तैयार नहीं है जबकि वर्तमान में आधुनिक युग विज्ञान का युग है। अतः वे भारतीय व्यस्कता अधिनियम का एवं बाल विवाह निषेधक अधिनियम का उल्लंघन करके भी अपने कर्त्तव्य का पालन करने में संकोच नहीं करते हैं। परिणामतः बालिकाओं को शिक्षा से वंचित रह जाना स्वाभाविक है।

रूढिवादी विचारों के सीमित दायरे में निवास करने वाले अनेक हिन्दू स्त्री का उचित स्थान घर के अन्दर मानते हैं अतः उनके मतानुसार बालिकाओं को घरेलू हिसाब किताब के लिए थोड़ा या अक्षर ज्ञान ही पर्याप्त है इसके अतिरिक्त उनकी धारणाएँ हैं कि बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् समानता एवं स्वतंत्रता का दावा करने लगती है

www.ignited.in

अतः वे बालिकाओं की शिक्षा के विरोधी हैं। बालिका शिक्षा की एक अत्यन्त गंभीर समस्या अपव्यय एवं अवरोधन भी है, बालिकों की तुलना में बालिकाओं की शिक्षा में अपव्यय, अवरोधन अधिक है पर्दा एवं बाल विवाह का प्रचलन, अन्धविश्वासों में आस्था और बालिकाओं की शिक्षा के प्रति संकुचित दृष्टिकोण के फलस्वरूप बालिकाएँ अपने को विवशता से इतना उलझा हुआ पाती है कि वह बालकों के समान ज्ञान अर्जन नहीं कर पाती है।

शिक्षक की भूमिका

शिक्षण की दृष्टि से अध्यापक का अत्यधिक महत्व है। शिक्षा के सुधार के लिए सच्चरित्र एवं कुशल अध्यापक का होना अनिवार्य है। आज के बदलते हुए परिवेश में अध्यापकों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गयी है। आज अध्यापकों के वर्तमान सामाजिक प्रतिष्ठा में पहले की अपेक्षा हास हो रहा है। इसके कई कारण है- अध्यापकों में कार्य-न्यूनता, उत्साह का अभाव, आर्थिक परिस्थिति तथा कार्य असन्तोष आदि है। वर्तमान समय में अध्यापक अपनी भूमिका का निर्वाह कितने उपयुक्त ढंग से करता है तथा किन भूमिकाओं को वह अधिक महत्व देता है, यह भी उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को प्रभावित करता है। विद्यालय के छोटे कार्य से लेकर शिक्षण विधि सम्पादन तक समस्त शैक्षिक प्रक्रिया का संचालन अध्यापक करता है। अनेक भूमिकाओं का सफलतापूर्वक निर्वाह करने में अध्यापकों को कई परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। इन विभिन्न भूमिकाओं को शिक्षक किस प्रकार सम्पन्न करता है, उसका प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ता है। आधुनिक युग में अध्यापक के महत्व पर और अधिक बल दिया जाता है। महात्मा गाँधी ने अध्यापक के बारे में कहा है ष्छात्र अध्यापक के व्यक्तिगत जीवन से बहुत कुछ सीखते हैं, वे इतना उन व्याख्यानों से जो अध्यापक अपने मुख से उन्हें देता है, नहीं सीखते। मुझे यह खोज कर प्रसन्नता होती है कि छात्र-छात्राएं बिना जाने ही अपने मस्तिष्क में एक अन्तर-विधि-विभाग रखते हैं जिनमें वे अपने अध्यापकों के विचारों का अध्ययन कर लेते हैं। उनको उन अध्यापकों से दुःख होता था जो वाणी से कुछ कहते थे और मन में कुछ रखते थे। शिक्षा के कार्यक्रमों की सफलता अध्यापकों के गुणों पर निर्भर है। अध्यापक का कार्य विषय शिक्षण तक सीमित नहीं है अपितु अपने आचरण के द्वारा छात्रों में मानवता का बीजारोपण भी करना है तथा नैतिकता एवं सद्चरित्र का पाठ पढ़ाना है। अध्यापक के लिए उपदेश का विधान बाद में है। आचरण की संहिता पहले निर्धारित है। आचरण से ही वे आचार्य कहलाते हैं। उपदेश तो उनका परिवर्ती एवं भौतिक मात्र है। अध्यापक अनुकरणीय एवं पवित्र आचरण के कारण छात्रों के लिए आदर्श होता है।"

वर्तमान में महिला शिक्षक

भूमंडलीकरण के दौर में प्राथमिकताएं बहुत बदल गई है। जो गरीब हैं और जिनके पास कुछ नहीं है उनकी प्राथमिकताएं नहीं बदल सकती हैं। उनके लिए तो रोटी, कपड़ा, मकान थोड़ी सी इज्जत, बच्चों के लिए शिक्षा और अपने लिए थोड़े सी स्वास्थ्य सेवाएं पहले भी प्राथमिक थीं और आज भी है। शहरी क्षेत्रों में स्थिति काफी खराब है। शहरी भारत में 945 रोजगार दफ्तरों में 2003 में 1.7 करोड़ महिलाओं के नाम दर्ज थे जिनमें से 70 प्रतिशत से अधिक दसवीं पास या उससे अधिक पढ़ी लिखी थीं। ये महिलाएं पलायन के लिए मजबूर है। इसीलिए देश भर की महिलाएं यह मांग करती रही हैं कि रोजगार को सुनिश्चित करने वाली योजनाए बनाई जाएं।

बहुधा हम देखते हैं कि किसी महिला का समाज में परिचय देते समय यह भी उल्लेख किया जाता है कि वह कामकाजी है या घरेलू. घरेलू महिला का अर्थ होता है जो घर में रह कर पति और बच्चों की देखभाल करे और कामकाजी महिला वह है जो घर से बाहर भी कुछ निश्चित घंटे कार्य करती है.बाहर निकल कर काम करने वाली या फिर कहा जाये कामकाजी महिलाओं को समाज में कुछ अधिक आदर से देखा जाता है और घरेलू मानी जाने वाली महिलाओं के मन में कहीं न कहीं इस बात के प्रति रोष भी होता है. संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा द्वारा वर्ष 2000 में वैश्विक मानव विकास हेतु सहस्त्राब्दी के आठ लक्ष्य घोषित किये गये हैं जिनमें महिला समानता व सशक्तिकरण को प्रोत्साहन एवं मातृत्व स्वास्थ सुधार, महिलाओं के विकास से संबधित है। यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि मानव विकास के लक्ष्य महिलाओं के विकास तथा सशक्तिकरण के साथ गहराई से गुंथे हुए हैं, जो एक स्वतंत्र समूह के रूप में भारत की कुल आबादी का लगभग 48.2 प्रतिशत हिस्सा बनाती हैं।

अनुसन्धान क्रियाविधि

शैक्षणिक अनुसंधान में यद्यपि कुछ समस्याएँ है परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि यह व्यर्थ है। शैक्षणिक अनुसंधान को वस्तुनिष्ठ और वैद्य बनाने के प्रयास निरन्तर होते रहते है। आज शैक्षणिक अनुसंधान के लिये निर्मित परीक्षण अधिक वैद्य और विश्वसनीय हाने के साथ-साथ उपयुक्त मानकों से भरपूर है, जिसके परिणामों की व्याख्या में सरलता होती है। इसके अतिरिक्त अब कुछ शोधकर्ता प्रयोगात्मक शोध में भी रूचि लेते है। इससे वस्तुनिष्ठ व अमूर्तता जैसी कठिनाई में काफी कमी आई है।

इस क्षेत्र में आज जो मुख्य समस्या है वह शोधकर्ता और शोध निरीक्षणकर्ता की लापरवाही के कारण है। वे चुनौतियों का सामना करने को तैयार नही है फिर भी इसमें पूर्व की अपेक्षा बहुत परिवर्तन आया है और निरंतर आ रहा है।

शोध के प्रकार

शोध का प्रमुख लक्ष्य वैज्ञानिक पद्वति के प्रयोग द्वारा प्रश्नों के उत्तर खोजना है इसका उद्देश्य अध्ययनरत समस्या के अंदर छुपी हुई यर्थाथता का पता लगाना या उस सबकी खोज करना है जिसकी जानकारी समस्या के बारे में नहीं है। वैसे प्रत्येक शोध के अपने विशेष लक्ष्य होते है फिर भी सैल्टिज, जहोदा, सी आर कोठारी आदि ने सामाजिक शोध को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया हैं। 1 किसी घटना के बारे में जानकारी प्राप्त करना या इसके बारे में नवीन ज्ञान प्राप्त करना- इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाने वाली शोध को अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध कहते है।

किसी व्यक्ति परिस्थिति या समूह की विशेषता का सही चित्रण करने के लिए की जाने वाली शोध को वर्णनात्मक शोध कहते है। 3 किसी वस्तु या घटना के घटित होने की आवृत्ति निर्धारित करना या किसी अन्य वस्तु या घटना के साथ संबंध स्थापित करने के लिए निदानात्मक शोध उपयोग में लाई जाती है। 3 विभिन्न चरो में कार्य कारण संबंधों वाली उपकल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए उपकल्पना परीक्षण अनुसंधान या प्रायोगिक शोध उपयोग में लाई जाती है।

शोध की उपरोक्त श्रेणियों के आधार पर सामाजिक शोध को मुख्यतः निम्न रूपों में विभाजित किया जा सकता है।

1. मौलिक या विशुद्ध शोध-

शोध के इस प्रकार में सामाजिक जीवन या घटना के संबंध में मौलिक सिद्वांतों और नियमों का अनुसंधान किया जाता है। इसका उद्देश्य नए ज्ञान की प्राप्ति और बढ़ोत्तरी के साथ पुराने ज्ञान की पुनः परीक्षा द्वारा उसका शुद्धीकरण होता है इस प्रकार की खोज में नए तथ्यों और घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। मौलिक शोध के अर्न्तगत नए सिद्धांतों और नियमों की खोज नवीन परिस्थितियों और समस्याओं के उत्पन्न होने पर की जाती है। इसका कारण यह है कि इन नवीन सिद्धांतों का वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों के साथ ज्यादा से ज्यादा मेल बैठ जाए और हम उनके संबंध में अपने नवीनतम ज्ञान के सहारे मौजुद परिस्थितियों की चुनौती का सामना अधिक सफलता पूर्वक कर सकें। शोधकर्ता अपने अनुसंधान के द्वारा जो सामाजिक शोध ज्ञान की प्राप्ति परिमार्जन और परिवर्धन को अपना लक्ष्य मानता है उसे मौलिक शोध कहते है।

2. व्यावहारिक शोध

पी वी यंग के अनुसार खोज का एक निश्चित संबंध लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं और कल्याण से होता है। सिद्धांत और व्यवहार आगे चलकर बहुधा एक दूसरे में मिल जाते है इसी मान्यता के आधार पर सामाजिक शोध के दूसरे प्रकार को व्यावहारिक शोध कहा जाता है। इस प्रकार के व्यावहारिक शोध का संबंध सामाजिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष से होता है और वह सामाजिक समस्या के संबंध में ही नहीं बल्कि सामाजिक नियोजन, सामाजिक अधिनियम, स्वास्थ्य रक्षा संबंधी नियम,धर्म, शिक्षा, न्यायालय, मनोरंजन आदि विषयों के संबंध में भी अनुसंधान करता है और इनके संबंध में कारण सहित व्याख्या और ज्ञान से लोगो को रूबरू करवाता है। इसका तार्पय यह नहीं है कि व्यावहारिक शोध का कोई संबंध समाज सुधार से,सामाजिक बुराईयों के उपचार से, सामाजिक अधिनियमों को बनाने या सामाजिक नियमों को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने से होता है।

3. क्रियात्मक शोध-

जब सामाजिक शोध अध्ययन के निष्कषो को क्रियात्मक रूप देने की किसी भावी योजना से संबंध होता है तो उसे क्रियात्मक शोध कहा जाता है। गुड्डे तथा हॉट के अनुसार क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का अंश होता हैं जिसका लक्ष्य उपस्थित अवस्थाओं का परिवर्तित करना होता है। चाहे वो गंदी बस्ती की अवस्था हो या किसी संगठन की प्रभावशिलता हो । इस शोध में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

डेटा विश्लेषण

तालिका 1 शहरी महिला शिक्षकों/शिक्षा मित्रों के प्राथमिक विद्यालयों में साथी शिक्षको संबन्धी पदो का विश्लेषण

क्रम	समूह	N	M	SD	D	T Factor	सार्थकता स्तर
1	शहरी महिला शिक्षक	335	112.90	9.26	1.015	2.018	0.05 स्तर पर सार्थक
2	शिक्षा मित्र	65	113.09	9.98			

लिंग भेद के कारण बहुत से पुरुष शिक्षक महिला शिक्षा कर्मियों के साथ उचित व्यवहार नहीं करते है जिस कारण महिला शिक्षा कर्मियों का अध्यापन कार्य में मैन नहीं लगता है महिला शिक्षा कर्मियों के ऊपर घर के काम का भी दबाव

www.ignited.in

होता है जो उन्हें अपने घर में पूर्ण कर के ही आना होता है यदि वे एक दिन भी अपने किसी भी भूमिका के समायोजन में विफल रहती है तो समाज में उन्हें ही दोषी बताया जाता है

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकोध् शिक्षा मित्रों के साथी शिक्षको के व्यवहार संबन्धी विश्लेषणो का मध्यमान क्रमशः 112.9 और 113.09 है, जबकि मानक विचलन क्रमशः 9.26 और 9.98 है। टी-अनुपात का मान 2.018 है, जो 0.05 स्तर पर सार्थक है। अतः उप परिकल्पना कि ग्रामीण विद्यालयो में कार्यरत शहरी महिला शिक्षको के कार्य अभिगम में साथी शिक्षको के व्यवहार का सकारात्मक योगदान है।" स्वीकार की जाती है।

उपरोक्त परिणाम दर्शाते है कि अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकोध् शिक्षा मित्रों के प्रति साथी शिक्षको का व्यवहार सहयोगत्मक होता है ।

उपसंहार

सरकारी विद्यालयों में कार्यरत महिला शिक्षकों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ने का कारण उन्हे अध्यापन के अतिरिक्त अन्य कार्य भी करने पड़ते है। जिससे कि वह अपने परिवार को कम समय दे पाती है। जिससे कि वह तनाव महसूस करती है। युवा आयु समूह 20-35 वर्ष की महिलाओं में पारिवारिक समायोजन, बच्चों सम्बन्धित समस्याओं, घर की जिम्मेदारियो, वित्तिय जवाबदेही व सम्बन्धों संबंधी समस्याओं के अनुभव में कमी के कारण तनाव उत्पन्न होता है। जैसे-जैसे महिलाएं इन समस्याओं से निपटने का तरीका खोज लेती हैं तनाव में कमी आती जाती हैं जबकि आयु वृद्धि के साथ पूर्व में जिन परिस्थितियों के कारण महिलाऐं तनाव अनुभव करती थी महिलाएं उनका समाधान करना सीख जाती हैं। यह क्षमतायें महिलाओं में आयु मनुष्य का जीवन काल उसकी आयु सीमा से सम्बन्धित होता हैं परन्तु समान आयु के दो मनुष्यों का व्यवहार एक ही परिस्थिति के लिये समान नहीं होता है प्रस्तुत शोध 20 वर्ष से 60 वर्ष की महिला शिक्षकों पर किया गया ताकि युवा और प्रौढ़ दोनों ही महिला शिक्षकों के शैक्षिक व व्यवहारिक वृद्धि के साथ-साथ अनुभव द्वारा विकसित होती हैं। शिक्षा व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। "शिक्षा व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करती है। जिससे व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार मानव जीवन के लिए मौलिक योगदान कर सके।" व्यक्ति के विचारों पर उसाकी शिक्षा का प्रभाव पड़ता है। महिलाओं में तनाव के स्तर पर भी शिक्षा का प्रभाव पड़ता है क्या? जानने के लिए महिलाओं की शिक्षा का स्तर ज्ञात करना आवश्यक है। महिला शिक्षकों में 10+2 से डाक्टोरेट तक शिक्षा प्राप्त की है तथा व्यवसायिक योग्यता के मामले में B-Ed BTC and M-Ed सभी स्तर के महिला शिक्षकों को अध्ययन में शामिल किया गया । शिक्षा व्यक्तित्व विकास के लिए महत्वपूर्ण है। व्यक्ति के विचारों पर उसकी शिक्षा का प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय में गृह कार्यो को करने के लिए उच्च तकनीकी सुविधायें उपलब्ध हैं परन्तु उनके सम्पादन हेतु तकनीकी, ज्ञान, कुशलता, उपकरणों के लिए प्रशिक्षण व पर्याप्त जानकारी की आवश्यकता होती है। उच्च शिक्षा प्राप्त घरेलू महिलाऐं, वैवाहिक जीवन में बेहतर समायोजन कर समस्याओं को बिना किसी तनाव व अवसाद के हल करती है। उच्च शिक्षा महिलाओं को वैवाहिक समायोजन और समस्याओं के समाधान में प्रोत्साहन के साथ बच्चों की अच्छी परवरिश व देख-भाल में भी सहायक होती है। अधिकांश महिलाऐं वे चाहे घरेलू हों या कामकाजी इस बात से तनाव ग्रस्त रहती हैं कि वे उच्च शिक्षित नहीं हैं वे सदैव ये सोचा करती हैं यदि वह उच्च शिक्षित होती तो बच्चों को पढ़ा सकती थीं साथ ही उनके पास रोजगार के अच्छे अवसर उपलब्ध होते।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. किदवई हुमा और अन्य (2013) ग्रामीण भारत में सार्वजनिक प्राथमिक स्कूलों के लिए इन-सर्विस टीचर ट्रेनिंगय वर्किंग पेपर्स सीरीजय मॉडल डिस्ट्रिक्ट्स एजुकेशन प्रोजेक्टय (मुंबई)

2. जयचंद्रन, उषा (1997), 'भारत में प्राथमिक शिक्षा के निर्धारक,' एमएससी थीसिस, अर्थशास्त्र विभाग, दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स।

3. स्टॉकयार्ड जीन और माइकल ब्रायन लेहमैन (2004): सन 1 वर्ष के शिक्षकों की संतुष्टि और प्रतिधारण पर प्रभावः शैक्षिक प्रशासन में प्रभावी स्कूल प्रबंधन का महत्व ', खंड 40, दिसंबर 40।

4. ए. अल्टेकर "हिंदू सहवास में महिलाओं की स्थितिय मोतीलाल बनारसीदास, 1962 2

5. अजीज, एम. (2004)। भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में महिलाओं के बीच भूमिका तनाव। मैनेजमेंट रिव्यू में महिलाएं, 19 (7), 356-363

6. सी. मंजुला (2012) ए स्टडी ऑन पर्सनैलिटी फैक्टर्स कॉजिंग स्ट्रेस इन स्कूल टीचर्सय भारत में भाषा 12: 2

7. कुशमेन. पी. (2005): आइए इसे पुरुषों से सुनें: शिक्षण और शिक्षण शिक्षा में पुरुष प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक का सामना करना पड़ रहा है', खंड 21, अंक, पृष्ठ 227 - 240

8. देसाई, एस।, और जैन, डी. (1994). मातृ रोजगार और परिवार की गतिशीलता में परिवर्तनः ग्रामीण दक्षिण भारत में महिलाओं के काम का सामाजिक संदर्भ। जनसंख्या और विकास की समीक्षा, 20 (1), 115-136। http://doi-org/10-2307/2137632

9. डेविड एच। मोंक (2009) रिक्रूटिंग एंड रिटेनिंग हाई-क्वालिटी टीचर्स इन रूरल एरिया, प्रिंसेट यूनिवर्सिटी, वॉल्यूम-17/नं. 1/ वसंत 2007

10. इवांस, लिंडा, (1998): टीचर्स मोरेल, जॉब सैटिस्फैक्शन एंड मोटिवेशन, SAGE पब्लिकेशंस लिमिटेड, 978-1853963896

Corresponding Author

KM. Bazme Zhera*

Research Scholar, Shri Venkateshwara University, Gajraula, Uttar Pradesh